

**उत्तर एवं मध्य भारत के सामुदायिक लोकसंगीत एवं लोकनृत्य पर आधारित
राष्ट्रीय संगोष्ठी का संक्षिप्त विवरण
(२७ से २९ फरवरी, २०१२)**

इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय कला केन्द्र, पूर्वक्षेत्रीय केन्द्र, वाराणसी एवं कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित "उत्तर एवं मध्यभारत के सामुदायिक लोकसंगीत एवं लोकनृत्य" पर आधारित त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी विगत २७ से २९ फरवरी, २०१२ तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कलासंकाय परिसर स्थित एनी बेसेंट हाल में आयोजित हुई। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कला संकाय प्रमुख, प्रो० कमलशील एवं इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय कला केन्द्र, वाराणसी के परामर्शदाता प्रो० कमलेशदत्त त्रिपाठी के संयुक्त नेतृत्व में यह आयोजन सम्पन्न हुआ। इस ज्ञानसत्र में देश के प्रथितयशस्वी कलाविद्, कवि, अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के पूर्व कुलपति श्री अशोक वाजपेयी मुख्य अतिथि के पीठ पर आसीन थे। इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली के जनपदसंपदा विभाग की अध्यक्ष प्रो० मौली कौशल ने विशिष्ट अतिथि के पद को अलंकृत किया।

इस अनुष्ठान का उद्घाटन २७ फरवरी को प्रातः ११ बजे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कलासंकाय परिसर स्थित एनी बेसेन्ट हाल में हुआ। दीप प्रज्वलन, महामना मालवीय जी के प्रतिकृति पर माल्यार्पण तथा कुलगीत प्रस्तुति के बाद कला संकाय प्रमुख, प्रो० कमलशील ने सभागार में उपस्थित अतिथियों एवं विद्वज्जनों का स्वागत किया। अध्यापिका डा० अर्चना कुमार ने गोष्ठी का विषय प्रवर्तन किया।

कलामर्मज्ञ श्री अशोक वाजपेयी जी ने अपने प्रास्ताविक भाषण को प्रस्तुत करते हुए लोककला के महत्व, इसके पददर्शन के उचित स्थान, उचित अवसर एवं उसकी अनुकूलता पर विचार व्यक्त किये। अपने विस्तृत व्याख्यान में वाजपेयी जी ने कहा कि लोककला हमारे देश की सम्पदा है। यहाँ कलाकार भी भारी संख्या में मौजूद हैं जो दिनभर खेती में मेहनत करने के बाद रात में अपने मनोरंजन के लिये गाते बजाते रहे हैं। लेकिन लोकसम्पदा निरन्तर अवहेलित होती आयी और उस अवहेलना के स्तर से उबार कर उन्हें मंच देकर इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय कला केन्द्र ने एक प्रशंसनीय काम किया है।

आगे बोलते हुये श्री वाजपेयी जी ने इस कला के प्रदर्शन के स्थान पर प्रकाश डाला। वास्तविक परंपरा के अनुसार इस कला का प्रदर्शन उन्मुक्त आकाश के नीचे होता है और वहीं इसका स्वाभाविक सौन्दर्य पूर्ण रूप से उभरता है। इसको स्वाभाविक केन्द्र से उखाड़ कर बन्द मंचों पर लाने से उसमें कुछ सीमा तक विकृति आ जाती है। मंच पर प्रदर्शन होने से कलाकार, श्रोता एवं दर्शकों के बीच जो दूरी होती है, उसे मिटाना चाहिए क्योंकि लोककला का स्वभाव लगाव का है, अलगाव का नहीं। इस कला का प्रदर्शन अवसर क अनुरूप भी होना चाहिए।

अपने व्याख्यान में श्री वाजपेयी जी ने बताया कि लोक कलाकार स्वतन्त्र होते हैं इसलिये इस कला की धारा में विविध आयामों की परिवर्तन हो गयी है। वास्तव में लोककला की धारा एक प्रवहमान निरन्तर धारा है। इसकी निरन्तरता में परिवर्तन का खोज लोककला के प्रदर्शन में दिखते हैं।

लोककला की निरन्तरता के इतिहास पर चर्चा करते हुए श्री वाजपेयी जी ने कहा कि शास्त्रीय कला विशेषतः संगीत के मूल लोक में निहित है। १९वीं सदी में लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत में संयोग एवं संवाद आरम्भ हुआ। शास्त्रीय संगीत में कजरी, होरी, एवं चैती का अनुप्रवेश इसी का प्रमाण है। परन्तु परवर्ती कालों में किसी कारण से इस संवाद की धारा में गतिरोध आ गया। अन्त में श्री वाजपेयी जी देश के इस अनमोल धरोहर की रक्षा एवं बचाव के लिए सभागार में आह्वान किया।

विशिष्ट अतिथि के रूप में प्रो० मौली कौशल ने अपना वक्तव्य रखा। अपने भाषण में प्रो० कौशल ने लोकसंगीत एवं लोकाख्यान के विविध रूप, विषयवस्तु के पृष्ठभूमि के वैविध्य पर चर्चा की। साथ ही लोक जीवन के विभिन्न आयामों के साथ लोकला विशेषतः लोकसंगीत का जो निरन्तर संवाद चला आया है, उस पर भी प्रकाश डाला।

सत्राध्यक्ष के रूप में संस्था के परामर्शदाता प्रो० कमलेशदत्त त्रिपाठी ने अपने भाषण में कहा कि शास्त्रों को समझने की कोशिश लोककलाओं के माध्यम से करनी चाहिए। कारण भारतीय निजता की खोज अन्य कलाओं की अपेक्षा लोककला के माध्यम से ज्यादा हुई। 'इष्टा' के कला-आन्दोलन लोकसंगीत, लोकनाट्य एवं रंगमंच के रूप में ही आरम्भ हुआ। इसके बीजारोपण करने वाले के रूप में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का नामोल्लेख अवश्य करना चाहिए। शहर से दूर हटकर लोक जीवन एवं उनकी कला सम्पदाओं के बीच विश्वविद्यालय (विश्वभारती) की स्थापना में, शान्तिनिकेतन में अनुष्ठित ऋतु-उत्सवों में, उनके रचित बाउल एवं कीर्तनांग के गीतों में, फाल्गुनी एवं अन्य नाटकों में इसी चिन्ता का प्रतिफलन दीखता है। स्वतन्त्रता के बाद कला की निरन्तरता के खोज और जोरदार तरीके से हुई। अतः लोककला को भारतीय अस्मिता की खोज के माध्यम के रूप में माना जा सकता है।

डा० संजय कुमार के धन्यवाद ज्ञापन से उद्घाटन सत्र की समाप्ति हुई।

संगोष्ठी का प्रथम सत्र "होरी / चैती" पर केन्द्रित था। इस सत्र में चार वक्ता थे - डा० राम नारायण तिवारी, डा० हसन इमाम, डा० हरेराम तिवारी एवं प्रो० अवधेश प्रधान। प्रथम वक्ता प्रो० रामनारायण तिवारी ने "फगुआ / होरी" पर केन्द्रित अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया। अपने विस्तृत आलेख में प्रो० तिवारी ने 'होली' गायन के १९ प्रकार, उसके वैशिष्ट्य, गायन के सहायक वाद्य पर विस्तार से चर्चा की। साथ ही स्थान भेद के कारण, गायन शैली भेद के कारण, गायन के पात्र (गायक / गायिका) भेद के कारण, कैसे एक होली शीर्षक होने के बावजूद होली / फगुआ, फाग, चैती/चैता, वसन्त, चौताल, होरी/ होरा, लटका चटका, मनोरा, रसिया आदि विभिन्न प्रकार के हो जाते हैं, इस पर भी उन्होंने सविस्तार प्रकाश डाला। इसके बाद

तिवारी जी ने इस गीत के विषय वैविध्य पर बतलाया कि मूलतः ऋतु अथवा प्रकृति वर्णन, राधा-कृष्ण की प्रेमलीला आदि विषयवस्तु के रूप में होते हैं। पर आजकल सामाजिक या साम्प्रतिक राजनैतिक घटनाएं भी इसमें समाविष्ट हो जाती हैं।

अन्त में वक्ता ने इस लोकगीत विधा के प्रति हो रही साम्प्रतिक अनादर एवं अवहेलना पर लोगों की दृष्टि आकर्षित करके इसको बचाने की आवश्यकता बतलायी।

द्वितीय वक्ता श्री हसन इमाम थे। उनके शोधपत्र का विषय रहा चैता। होली सम्बन्धित लोकगीतों में प्रचलित एक विधा है चैता। इसके कई उपविभाग होते हैं - चैती, चैता, बिरहा, घाटो, रसिया आदि। तत्पश्चात् इस गीतविधा के नामकरण के याथार्थ्य पर प्रकाश डालते हुए वक्ता ने कहा कि होरी के अवसर पर या वसन्त ऋतु के समागम पर चैत महीने में बिहार में गाये जाने वाले गीत को चैता कहा जाता है। इसके भिन्न-भिन्न नाम एवं उनमें विद्यमान सूक्ष्म पार्थक्य पर भी वक्ता ने विचार किया। इसके बाद विद्वान् वक्ता ने इन गीतों के विषयवस्तु के वैचित्र्य पर चर्चा करते हुए बताया कि इन गीतों में जैसे सीता के वनवास जैसी काव्यवस्तु पर रचनाएँ ग्रथित हैं, वैसे ही स्त्री-स्वाधीनता एवं सशक्तीकरण जैसे आधुनिक विषयों पर भी आधारित रचनाएँ हैं। चैता हर वर्ग एवं जाति के लोग गाते हैं।

सत्र के तीसरे वक्ता थे डा० हरेराम तिवारी। उन्होंने "भोजपुरी गीतों में होली" विषय पर अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया। वसन्त ऋतु तथा होली का पर्व निकट आते ही होली विषयक गीत के गायन आरम्भ हो जाता है। होली गीत की शुरुआत ईश वन्दना से होती है। इसके प्रकार भेद के विषय पर वक्ता ने कहा कि बड़ी होली, छोटी होली, फाग, फगुआ, वसन्त, चौताल आदि विभिन्न प्रकार के होली गीत गाये जाते हैं।

वक्ता के अनुसार इस पर्व पर वसन्त तथा ऋतुविषयक गीत गाने की प्रथा की सूचना वेद, उपनिषद् तथा पुराणकाल में ही हुई थी। उनके कहने के अनुसार असली होली आंखों की पुतलियों में ही खेली जाती है क्योंकि होली का तात्पर्य आन्तरिक हर्षोल्लास से सम्बद्ध है। इन होली गीतों के निर्माण काल की कोई सीमित अवधि बताया नहीं जा सकता। फिर भी द्वापर का की ब्रज की होली से भी इसकी शुरुआत माना जा सकती है। महाभाव स्वरूपा राधा, कृष्ण को आलम्बन करके उनके ऊपर प्रेम के रंगों की वर्षा करती हैं। अनुप्राणित होकर कृष्ण भी प्रेम की अबीर-गुलालों से राधा और गोपियों को रंगते हैं।

सूरदास, कबीरदास जैसे सन्तों ने भी होली पर गान लिखे हैं। बाद में सूफी फकीरों ने भी निर्गुण / होरी / चैता, फगुआ विधा के गीत लिखे हैं। निष्ठा और भक्ति में जीव-ब्रह्म के तादात्म्य तथा ब्रह्मलीन होने में ही इन गीतों के तात्पर्य होते हैं।

इस सत्र के अन्तिम वक्ता प्रो० अवधेश प्रधान थे। 'होली' पर शोध विचार व्यक्त करते हुए विद्वान् वक्ता ने अपने गाँव की होली के वर्णन किया। होली उत्सव तथा होलीविषयक गीतों पर चर्चा करते हुए प्रो० प्रधान ने होली गीत के पृष्ठभूमि पर चर्चा की। होली गीतों का गायन महाशिवरात्रि से शुरू होकर सम्पूर्ण फाल्गुन शुक्ल पक्ष अर्थात् पूरे एक पखवारे तक चलता है।

कहीं-कहीं इस उत्सव की व्याप्ति एक महीने तक भी होती है, पूरा गाँव उत्सव के उल्लास में मचल उठता है।

होली उत्सव तथा गीतों के विविध रूपों के बारे में प्रो० प्रधान ने बताया कि विविध प्रकार के होली गीत गाये जाते हैं। गाँव के रास्ते या तो घर के दरवाजे पर होली की जो टोली आती है और गीत गाती है उसके एक शान्त, सौम्य, सत्त्वप्रधान रूप हैं पर औरतों के बीच घर के अन्दर जो होली चलती है तथा गीत गाया जाता है उसका रूप उद्धत हो जाता है। इसमें घर की पूरी महिला मण्डल शामिल होती है। समय-समय पर मर्यादा के सीमा लंघन भी हो जाता है पर यह भी होली उत्सव तथा गीतों का एक प्रचलित रूप है। पर आजकल यह उत्सव तथा गीतों का प्रचलन लुप्त होता जा रहा है। इसमें प्रो० प्रधान ने साहित्यिक निराला के लिखे गये होली के तीन रूपों के कवि के बारे में भी चर्चा किया।

प्रो० राधेश्याम दूबे ने अपना अध्यक्षीय भाषण प्रस्तुत करते हुए भिन्न-भिन्न अवसरों में एवं भिन्न-भिन्न जनसम्प्रदायों में प्रचलित लोकगीत एवं नृत्यों के विविध प्रकार के विषय में विस्तृत चर्चा की। अपने विशद व्याख्यान में विद्वान् वक्ता ने इन लोकगीतों की पृष्ठभूमि, विषयवस्तु, उसकी विशेषता, गायनशैली एवं सहायक वाद्ययन्त्र पर भी अपने सूक्ष्म विचार व्यक्त किये।

दिनभर मेहनत के बाद अपने उत्कट दारिद्र्य / अभाव के मार सहन करते हुए भी वसन्त आते ही जैसे ये लोग गाना शुरू करते हैं, वह प्रयास निःसंदेह सराहनीय है। दारिद्र्य / विपत्ति में जीते हुये लोग कैसे दुःख में भी हँसते हैं, उसी की शिक्षा इन लोकगीतों में है। उन्होंने सभा में देश की इस धरोहर को संजीवित रखने का आग्रह किया।

सत्र संचालक प्रो० राजकुमार के धन्यवाद ज्ञापन से सत्र की समाप्ति हुई।

सायंकालीन सांस्कृतिक सत्र में मध्यप्रदेश के भेरू सिंह चौहान एवं सम्प्रदाय की कबीर के निर्गुण विषयक भजन एवं भोजपुर एवं बक्सर के कलाकारों द्वारा भोजपुरी होलीगीतों की प्रस्तुति हुई।

संगोष्ठी के दूसरे दिन प्रातः १०. ३० बजे शैक्षणिक सत्र से दूसरा सत्र शुरू हुआ। डा० मौली कौशल की अध्यक्षता में इस सत्र के प्रथम वक्ता डा० अर्जुन दास केशरी थे जिन्होंने "विश्व के सबसे प्राचीन गोडऊ नृत्य" पर अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया। अपने विस्तृत व्याख्यान में डा० केशरी मूलतः मध्यप्रदेश के गोंड नाच के विषय पर चर्चा की। गोंड मध्यभारत के दक्षिण पूर्व भाग में स्थित 'गोण्डवाना' प्रदेश की एक पुरानी जनजाति है। ये लोग नगर से दूर जंगल या तो पहाड़ में रहने वाले हैं। यही जनजातियों के बीच प्रचलित नृत्यशैली है गोंडऊ नृत्य। वास्तविक बात तो यह है कि नृत्य इन लोगों की जीवनचर्या में ही है।

दिनान्त में अपने अपने आजीविका से जब छुटकारा मिलता है, तब या चांदनी रात में खुली जगह पर अच्छे लिबास एवं भूषण पहन कर ये लोग मादल बजाकर नाचते गाते हैं। पहले विद्वान् वक्ता ने गोंड जाति के बारे में बताया कि गोंड माझी या मझवार पर्यायवाची शब्द है।

इसके बाद उन्होंने इन लोगों की भौगोलिक अवस्थान, जाति के इतिहास, सामाजिक पृष्ठभूमि एवं सांस्कृतिक रीति रिवाजों पर भी चर्चा की।

इन गीतों के अवसर पर विचार करते हुए डा० केशरी ने बताया कि वसन्त ऋतु और एकादशी के अवसर पर यह नाच-गाना होता है या तो भादों के शुक्ल पक्ष वाले एकादशी से पूर्णिमा तक जो इन लोगों के जाति के आराध्य देवता कर्मादेव की पूजा की प्रशस्त तिथि पर होता है। उस समय पर भी गोंडू शैली के नृत्य गीत उन जातियों में होता है। विद्वान् वक्ता ने कर्मापूजा के पृष्ठभूमि के रूप में स्थानीय एक कहानी बतलायी। इन लोगों का विश्वास है कि कर्मापूजा के अवसर पर जो व्यक्ति नाच गानों में शामिल नहीं होगा, अगले बार उसका जन्म प्रेत योनि में होगा। इस पूजा के अवसर पर गाँव के लोग उत्सव के उपयुक्त नये वस्त्र, जेवर, गाने के वाद्ययन्त्र खरीद लाते हैं। अपने वक्तव्य के उदाहरण पर वक्ता कुछ गीत भी प्रस्तुत किये। कर्मापूजा के अतिरिक्त गाँव में विवाहादि अवसरों पर भी गोंडू नृत्य एवं गीतों का प्रचलन है। प्रसंगतः वक्ता ने विवाहादि में प्रस्तुत नृत्य के उपयुक्त वेशभूषा, अलंकार एवं सहायक वाद्ययन्त्र पर भी प्रकाश डाला।

सत्र के द्वितीय वक्ता डा० आद्या प्रसाद द्विवेदी थे। भोजपुरी में प्रचलित लोकप्रिय नृत्यविधा गोंडू पर चर्चा की। शुरूआत में विद्वान् वक्ता ने गोंडू नाच के पृष्ठभूमि में लोकमंच पर संक्षिप्त चर्चा की। भोजपुरी संस्कृति में स्वांग, नृत्य और संगीत के मिलाजुला रूप है लोकनृत्य। प्रसंगतः उन्होंने लोकनृत्य के उत्स दूँढ़ते हुए संस्कृत साहित्य के रूपक एवं उपरूपकों के विविध भेद पर भी विस्तार से आलोचना किया। उनके कहने के अनुसार रासक, हल्लीसक, डिम, ईहामृग (संस्कृत रूपकों के प्रकार भेद) यह सब लोकनृत्य के ही विविध विधा के प्राथमिक रूप हैं।

गोंडू एक सम्पूर्ण भिन्न रूप का नाच है। इसमें गोण्डवाना प्रदेश के आदिवासी जाति की संस्कृति का प्रतिबिम्ब है। प्रसंगतः विद्वान् वक्ता ने जनजाति के भौगोलिक पृष्ठभूमि, उनलोगों की आजीविका, सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पर भी चर्चा की। यह नृत्य तो गोंड, कुम्हार, जुलाहा आदि जनवर्गों के मनोरंजन के माध्यम अथवा जीवनशैली का अंग ही बताया जा सकता है। भिन्न-भिन्न जाति के लोकगीत या नृत्य के रूप भिन्न-भिन्न होते हैं। जैसे कहार जाति का कहरवा, कुम्हार का कुम्हारऊ, अहिर का बिरहा, मछुआरे, मल्लाहों, गोंड लोगों का गोडू इत्यादि। सभी नृत्यविधा में पोशाक, सहायक वाद्ययन्त्र एवं नृत्यशैली में जो सूक्ष्म भेद हैं, द्विवेदी जी ने उस पर भी चर्चा की एवं कुछ गीतों के बोल उदाहरण स्वरूप उद्धृत भी किये।

सत्र के तृतीय वक्ता महेश प्रसाद अहिरवार थे। उन्होंने "भारत के रहने वाले विभिन्न आदिवासी जनसम्प्रदाय के सामाजिक इतिहास" पर अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया। अपने विषय में विशेष रूप से गोंड जनजाति के भौगोलिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक जीवन, रीति रिवाजों पर विस्तार से आलोचना की। इतिहास के विभिन्न काल के आधार, उस समय के लोक जीवन, उनकी अस्मिता बचाने के लिये सतत संघर्ष, आधुनिक इतिहास में उनके प्रति की गयी

अन्याय, आजादी की लड़ाई में उन लोगों की कुर्बानी और बदले उनलागों की की गयी अनदेखी--इसका एक जीवन्त चित्र विद्वान् वक्ता ने पेश किया।

सत्र के चौथे वक्ता डा० मन्नु यादव ने गोंड जाति के संगीत नृत्य शैली, वाद्य एवं लोकभाषा पर अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया। अपने विस्तृत व्याख्यान में डा० यादव ने गंगा, सरयू, गोमती के किनारे रहने वाले और विन्ध्याचल के रहने वाले गोंड जाति एवं उनके भौगोलिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पर विस्तार से चर्चा की।

इस गीत के अवसर को बताते हुए वक्ता ने कहा कि अपनी कुलदेवी पूर्वीदेवी की पूजा के लिये इन लोगों को भिक्षाटन पर निकलना होता है एवं भिक्षा करने के लिये ही ये लोग गोंड नृत्य-गीत के माध्यम को अवलम्बन करते हैं। पूर्वी देवी की कोई मूर्ति नहीं, उनकी पिण्डपूजा होती है। इसी पूजा के प्रशस्त समय पर भी डा० यादव ने चर्चा की। इसी पूजा एवं इसके वैशिष्ट्य पर डा० यादव ने कहा कि सम्पन्न लोग अपने अर्जित धन से पूजा के खर्च उठा देंगे, ऐसा नहीं हो सकता। कुलदेवी की पूजा के लिए भीख मांग कर ही अर्थसंग्रह करना होगा और यही अर्थसंग्रह के लिये ही ये लोग नृत्य एवं गायन का सहारा लेते हैं। प्रसंगवश डा० यादव ने इन गीतों के विषयवस्तु एवं वैशिष्ट्य पर भी प्रकाश डाला एवं बीच बीच में उदाहरण के तौर पर कुछ गीत भी प्रस्तुत किया।

बाद में उन्होंने विभिन्न स्थानों के गोंड जाति के लोगों की आचार-आचरण, उनमें प्रचलित रीति-रिवाज, पूजा-पाठ एवं नृत्य-गायन शैली में पायी जाने वाली समानता एवं विभेद की स्पष्ट आलोचना किया। गोंड नाच के विभिन्न अवसर पर भी उन्होंने प्रकाश डाला।

सत्र के पाँचवें वक्ता डा० बालश्याम मिश्र थे। उन्होंने भी गोंड नाच पर अपना विचार व्यक्त किया। अपने संक्षिप्त लेकिन सारगर्भित व्याख्यान में डा० मिश्र ने भारत के उत्तर-पूर्वी भाग के लोकसंगीत एवं वहाँ प्रचलित नृत्यविधाओं पर आलोचना की। अपने शोध विषयक सामग्री जुटाने के लिये गोंड जनसमुदायों के बीच पहुँचे और उन लोगों से उन्हें पता चला कि यह नृत्य उनलोगों के मनोरंजन का माध्यम है क्योंकि दिनभर अथक परिश्रम के बाद उन लोगों के लिये मनोरंजन का और कोई साधन है नहीं। अपने व्याख्यान में डा० मिश्र जी ने इस लोकनृत्य परम्परा की शुरूआत की पृष्ठभूमि पर विचार किये। प्रसंगतः इस नृत्य-गायन कार्यक्रम में प्रयुक्त वेशभूषा, साज-सज्जा कैसी होगी, वाद्ययन्त्र क्या उपयुक्त होगा - इस पर भी विद्वान् वक्ता ने विचार किया।

सत्र के छठें वक्ता डा० बलराज पाण्डे ने चैता पर अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया। चैता सिर्फ एक महीने का गीत है। यह होली/ फाग के अवसर पर गाया जाता है और इसका शुरूआत होली के रात से ही होता है। होली के दिन रात के बारह बजे तक अबीर गुलालों की वर्षा करते हुए होरी/ फाग गाया जाता है। पर रात के बारह बजने के बाद से परवर्ती एक महीने तक चैता गाया जाता है।

वसन्त राग में गायी गयी शिव वन्दना से यह गीत आरम्भ होता है। कभी-कभी देव वन्दना में उपास्य देवता बदल भी जाते हैं (अर्थात् शिव के जगह गणेश, धरती या सरस्वती की वन्दना भी गायी जाती है)।

प्रधानतः चैता गीत का विषय 'वसन्त ऋतु एवं ऋतु-उत्सव' पर जन्म के अवसर पर भी चैता गाया जाता है पर उसके विषय बदल जाता है। जैसे जन्म के अवसर पर की गई अनुष्ठान में चिकित्सा से सम्बद्ध उपचार के विषय पर चैता गाया जाता है। विषयवस्तु के साथ इन गीतों के वैशिष्ट्य पर भी वक्ता ने चर्चा की। प्रेमी-प्रेमिका के संलाप, उनके रूठने-मनाने की प्रक्रिया, साम्प्रतिक राजनैतिक घटनावली भी चैता गीत के विषय हो जाता है। कभी-कभी नारियों के सौन्दर्य, उनलोगों का श्रृंगार विरहिणी नायिका के मनोव्यथा भी चैता गीत का विषय हो सकता है।

तत्पश्चात् विद्वान् वक्ता इस नृत्य के पात्र-पात्री, उनके वेशभूषा, अलंकार पर भी चर्चा की।

सत्र के अन्तिम वक्ता डा० सुरेन्द्र कुमार साहू ने उड़ीसा निवासी गोंड जाति एवं उनलोगों में प्रचलित 'दलखई' नाच के ऊपर अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया। अपने व्याख्यान के प्रारम्भ में डा० साहू ने उड़ीसा के गोंड, विज्जल, रावर जाति के परम्परागत नृत्य 'दलखई' का स्वरूप क्या है, इसकी व्याख्या की। वस्तुतः यह मातृ वन्दना एवं पूजन के ऊपर आधारित है। मूलतः कुमारी बालिकायें मातृपूजन के अवसर पर यह नृत्य करती हैं। पूजा के साथ साथ सस्वर / समान्तक नृत्य / गायन कार्य चलते हैं। किन्तु आजकल इस अवधारणा में कुछ परिवर्तन हो गया है। सभी जाति के लोग इस विषय पर जातीय एवं अन्तर्जातीय स्तर में आलोचना के साथ-साथ दलबद्ध रूप से मातृपूजन के तत्त्व पर नृत्य/ गीत भी करते रहते हैं।

इसके बाद विद्वान् वक्ता ने दलखई नृत्यविधा की शुरूआत, उसके भौगोलिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि, उड़ीसा के जनजातियों में इसके प्रति श्रद्धा, आस्था पर भी प्रकाश डाला। इस नृत्य के उपयुक्त अवसर, नृत्य के पात्र-पात्री, उन लोगों की वेशभूषा, नृत्य एवं गायन शैली, कार्यक्रम में प्रयुक्त वाद्ययन्त्रों के बारे में भी सविस्तार आलोचना किये।

सत्र के अन्त में अध्यक्ष डा० मौली कौशल ने सत्र में प्रस्तुत सभी प्रपत्रों पर अपने विचार व्यक्त की। सत्र-संचालक डा० राज कुमार के धन्यवाद ज्ञापन से सत्र की समाप्ति हुई।

दूसरे दिन सायंकालीन कार्यक्रम का प्रधान आकर्षण डा० सुचरिता गुप्ता के होली/चैता गायन, सुरेन्द्र साहू के दलखई एवं शोभित धुर्वे की शैला नृत्य एवं कामता गोंड द्वारा प्रस्तुत गोंड नाच था।

संगोष्ठी का तीसरा सत्र तीसरे दिन २९ फरवरी, २०१२ को सुबह १०.३० बजे शुरू हुआ। यह सत्र पँवरिया, जोगिया एवं कुम्हरऊ (लोकनृत्य के तीन लुप्तप्राय विधाएं) पर केन्द्रित था। इस सत्र के प्रधान वक्ता थे डा० सदानन्द शाही, डा० पुरुषोत्तम, डा० प्रकाश उदय, चौधरो कन्हैया प्रसाद एवं रामनारायण तिवारी आदि। सत्राध्यक्ष थे डा० ओम प्रकाश भारती।

सत्र के प्रथम वक्ता डा० सदानन्द शाही गोरखपुर में प्रचलित एवं जनप्रिय नृत्तविधा 'जोगिया' पर अपने भाषण दिये। गोरखपुर सिद्धयोगी गोरखनाथ के लिये विख्यात है और उनके अनुयायीगण (सम्प्रदाय) जोगि / योगि नाम से ही जाने जाते हैं। प्रो० शाही उन योगियों के गाँव का दौरा करके इस जनजाति की दिनचर्या, जीवन शैली/जीवन दर्शन, रीति-रिवाज, पहनावा, आजीविका के बारे में जानने की कोशिश की एवं इन सारे तथ्यों को उन्होंने अपने भाषण में विस्तार से चर्चा की। योगियों में प्रचलित नृत्त गीत शैली को जोगिया बोलते हैं। जोगी हिन्दू मुसलमान दोनों प्रकार के ही होते हैं। साधारण रूप से ये गेरुआ वस्त्र पहनते हैं। कभी-कभी गुदड़ी भी पहनते हैं एवं सारंगी बजा कर नाचते हुए अपने गुरु सम्प्रदाय से मिला हुआ गीत गाते हैं। इनकी आजीविका भिक्षाटन है क्योंकि इन लोगों के पास खेती जमीन कुछ नहीं होती। घर टूटा-फूटा लेकिन भिक्षाटन छोड़कर कुछ और करने को ये तैयार ही नहीं होते। जोगियों की पद्धति के अनुसार वह अपने को मुसलमान बताते हैं और गुरु गोरखनाथ, गोपीचन्द-मयनामती एवं राजा भर्तृहरिविषयक गीत गाना पसन्द करते हैं। कभी कभी कबीर का निर्गुण भजन भी गा लेते हैं। इन लोगों के गीतों में एक ज्ञानात्मक संवेदना दिखता है पर दुर्भाग्य का विषय है कि यह लोग और इन लोगों का गायन द्रुत गति से लुप्त हो रहा है जिसकी रक्षा होनी चाहिए।

द्वितीय वक्ता डा० पुरुषोत्तम थे। इन्होंने भी जोगिया पर अपना वक्तव्य रखा। जोगियों के तीन गाँव का दौरा करके जोगियों के बारे में जो तथ्य उन्हें मिला, उनका भाषण उन्हीं पर केन्द्रित था। वैशाली जिले के बेलाघर गाँव के रहने वाले जोगी ज्यादातर अपने को मुसलमान ही बतलाते हैं। गुरुआ वस्त्र पहनके, सारंगी बजाके, नृत्य के साथ ये कलाकार जोगियों के जीवन दर्शन विषयक गीत गाते हैं। गीतों के विषय मूलतः गोपीचन्द-मयनामती अथवा राजा भर्तृहरिविषयक होते हैं। कभी-कभी शब्दब्रह्म अथवा सन्यास के प्रसंग भी इन गीतों में आ जाता है। प्रसंगतः विद्वान् वक्ता नाथपन्थी जोगियों के बारे में भी विचार प्रस्तुत किया।

तृतीय वक्ता चौधरी कन्हैया प्रसाद थे। उन्होंने पँवरिया नृत्य पर अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया। उनके कहने के अनुसार बिहार के पवारा गाँव के जनजाति पवारा कहलाते हैं और उनके द्वारा गायी जाने वाली लोकगीत एवं नृत्य भी उसी नाम से जाना जाता है। विद्वान् वक्ता ने अपने सारगर्भित भाषण में इस जनजाति के भौगोलिक अवस्थान, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, इन लोगों की जीवनचर्या एवं आजीविका पर चर्चा की। यह पँवरिया नृत्य / गीत का विकास कैसे हुआ - इस पर भी वक्ता ने विचार प्रस्तुत किया।

सत्र के चौथे वक्ता डा० प्रकाश उदय ने पँवरिया नृत्यशैली पर अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया। पवारा जनजाति सिर्फ भोजपुरी नहीं, अपितु पूर्वी मध्यप्रदेश एवं राजस्थान, महाराष्ट्र, मालवा में भी दिखते हैं एवं इन्हीं लोगों के नृत्य गीत शैली पँवरिया नाम से जाना जाता है। विद्वान् वक्ता के अनुसार पवारा सिर्फ जनजाति नहीं, अपितु यह इन्हीं लोगों में प्रचलित एक अत्यन्त जनप्रिय छन्द है और इसी छन्द में निबद्ध गीत समूह एवं नृत्यविधा को पँवरिया कहा जाता है। उदाहरण के तौर पर वक्ता ने दो एक गीत भी पेश किया। उनके कहने के अनुसार यह

लोकविधा मृतविधा नहीं, यह खत्म नहीं हो सकता। परन्तु इसकी शैली में परिवर्तन आ रहा है। इसके भीतर इतनी शक्ति है, यह जीवित है एवं रहेगी।

सत्र के अन्तिम वक्ता थे डा० रामनारायण तिवारी। उन्होंने कुम्हरऊ पर अपना वक्तव्य रखा। डा० तिवारी ने अपने भाषण के शुरूआत में कहा कि लोकगीतों को किसी दायरे में बांधा नहीं जा सकता और इसके कोई निर्दिष्ट धुन नहीं, निर्दिष्ट शैली नहीं। यह अपनी धारा का सृजन कर लेती है। वक्ता अपने शोध के द्वारा कम से कम १६४ विधा के लोकधुन के साथ परिचित हुए। अतएव लोकगीत एवं गायनशैलियाँ भी इतने तरह के होनी संभव है।

उनके कहने के अनुसार कुम्हार जाति में प्रचलित जनप्रिय गीतशैली कुम्हरऊ नाम से परिचित है। यह पृथक कोई नृत्यविधा नहीं, अपितु लोकगीतों के दूसरे विधा के तरह कुम्हरऊ गीत भी नृत्य के साथ ही गाया जाता है। कुम्हार भाँड़ / कुण्डा ले आते हैं और उसी पर ताल बजाके गाते हैं। जन्म के अवसर पर सोहन में कुम्हरऊ गाया जाता है। किसी के घर में नवजातक ह इस सूचना पर ये लोगों के घर नृत्य / गीत करते पहुँच जाते हैं।

डा० तिवारी अपने भाषण में कुम्हरऊ नृत्य/ गीत शैली का विकास कैसे हुआ, इसके पात्र-पात्री, उन लोगों की वेशभूषा, नृत्य/ गीत के सहायक वाद्य, उनको देय दक्षिणा के बारे में सविस्तार आलोचन किया। प्रसंगतः उन्होंने इन गीतों के विषयवस्तु पर भी प्रकाश डाला। पौराणिक, सामाजिक, प्राकृतिक एवं राजनैतिक सत्ता के प्रति आक्रोश ये सब इन गीतों के विषय बनते हैं। बारहमासा भी इसका विषय हो सकता है। अन्त में डा० तिवारी ने कुम्हरऊ लोकविधा पर गम्भीर अध्ययन एवं शोधकार्य होना आवश्यक बताया।

सत्राध्यक्ष के रूप में डा० ओमप्रकाश भारती ने प्रस्तुत निबन्धों पर अपनी टिप्पणी दी एवं उन प्रपत्रों पर उठाये गये प्रश्नों का भी समाधान किया।

इस संगोष्ठी का समापन समारोह २९ फरवरी को दोपहर १२.३० बजे से आरम्भ हुआ। इस समारोह के मुख्य अतिथि के रूप में इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय कला केन्द्र के कार्यकारी सदस्य सचिव श्री वी० बी० प्यारेलाल उपस्थित थे एवं डा० विजयशंकर शुक्ल विशिष्ट अतिथि के रूप में विराजमान थे। सत्राध्यक्ष पद पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कलासंकाय प्रमुख प्रो० कमलशील सभासीन थे। आरम्भ में अतिथियों का माल्यार्पण एवं संवर्धना के बाद संगोष्ठी के दो प्रतिभाक्रियों ने संगोष्ठी के बारे में अपने अनुभव व्यक्त किये।

तत्पश्चात् प्रो० कमलेशदत्त त्रिपाठी ने संगोष्ठी के तीन सत्रों में प्रस्तुत सारे निबन्धों का संक्षिप्त विवरण दिया। सभा के विशिष्ट अतिथि डा० शुक्ल ने ऐसे संगोष्ठियों के महत्त्व एवं तात्पर्य पर अपने विचार व्यक्त किये। मुख्य अतिथि श्री वी० बी० प्यारेलाल ने लुप्तप्राय इस विधा को फिर से संजीवित करने के प्रयास की बहुत प्रशंसा की। डा० संजय कुमार के धन्यवाद ज्ञापन से संगोष्ठी की समाप्ति हुई।

तीसरे दिन के सायंकालीन सत्र में डा० मन्नू यादव की चैती / होरी गायन, मुनीव अहमद सम्प्रदाय की पँवरिया नृत्य एवं रामकृत् पजापति सम्प्रदाय द्वारा कुम्हरऊ गायन की प्रस्तुति हुई।

तीनों दिन सायंकालीन सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रो० राजकुमार द्वारा संचालित हुआ। मीडिया सेन्टर, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली के नेतृत्व में सम्पूर्ण अनुष्ठान का फिल्मांकन कराया गया जिससे यह लुप्तप्राय लोकसंगीत / लोकनृत्य की धारा को संरक्षित रखा जाए तथा सहृदय श्रोता / दर्शकों को सी०डी० रूप में उपलब्ध हो सके।

(प्रणति घोषाल)